इकाई 14 चित्तवृत्तियों के प्रकार, स्वरूप एवं निरोध

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 चित्तवृत्तियों के प्रकार, स्वरूप एवं निरोध

14.3 सारांश

14.4 शब्दावली

14.5 बोध प्रश्न / अभ्यास

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.0 उद्देश्य

- योग दर्शन के अनुसार चित्त के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- चित्तवृत्तियों का स्वरूप जान पायेंगे।
- चित्तानुरूप पुरुष के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- चित्तवृत्ति के भेद एवं उनके स्वरूप को जान सकेंगे।
- चित्तवृत्तिनिरोध के उपायों को समझ सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

दार्शनिक परम्परा में योग अत्यन्त प्रसिद्ध साधना पद्धति है। पुरुष का विषय से संयोग न होने पर भी उसे विषयानुकूल सुख–दुःख की अनुभूति होती है इसका एकमात्र कारण है कि बुद्धि का पुरुष में प्रतिबिम्बन होता है। बुद्धि का पुरुष में प्रतिबिम्बन होने का आशय है कि जैसे दर्पण के सामने जपाकुसुम के उपस्थित होने पर दर्पण का रंग रक्तवर्ण का न होते हुए भी सामान्य जनमानस को रक्तवर्ण ही प्रतीत होता है, मानो दर्पण का दर्पणत्व नष्ट सा हो जाता है, वस्तुतः ऐसा होता नहीं है किन्तु जपाकुसुम के उपस्थित हो जाने से दर्पण में विकार आ जाता है ठीक ऐसे ही पुरुष में बुद्धि का प्रतिबिम्बन होने पर पुरुष के निष्कलुष, निर्लेप होते हुए भी मानो चित्तवृत्तियों के अनुरूप विषयों का उपभोग करते हुए पुरुष सुखी –दुःखी होता रहता है। पुरुष ही अन्य दर्शनों में जीवात्मा के नाम से जाना जाता है। यद्यपि सृष्टि में विषयों की उत्पत्ति उपभोग के लिए ही हुई है चित्त भी अपनी सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक प्रकृति के अनुरूप विषयों का उपभोग करता रहता है। यह विषयों का उपभोग पारमार्थिक अर्थात् तात्त्विक न होकर केवल व्यावहारिक होता है। योग पुरुष में बुद्धि के प्रतिबिम्बन में बाधक बनता है अर्थात् बुद्धि को प्रतिबिम्बित होने ही नहीं देता है। जैसा कि योग का लक्षण ही है चित्तवृत्तियों का निरोध करना। अज्ञानवशात् पुरुष में बुद्धि का प्रतिबिम्बन होने पर पुरुष को जो विषयों का ज्ञान होता है, पुरुष को जो अनुभव होता है वह पुरुष और बुद्धि का सम्बन्ध योग द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। साङ्ख्यदर्शन में पुरुष एवं प्रकृति के विवेकज्ञान को ही विवेकख्याति कहा गया है। यह पुरुष एवं प्रकृति अर्थात् बुद्धि की वह अवस्था है जब तत्त्वज्ञान से पुरुषगत अज्ञान नष्ट हो जाता है। पुरुष एवं अन्य सभी तत्त्वों का साधर्म्य –वैधर्म्य ज्ञात हो जाता है। विवेकज्ञान होते ही

पुरुष में बुद्धि का प्रतिबिम्बन होना बन्द हो जाता है, चित्तगत वृत्तियों के अनुरूप जो पुरुष को सुख –दुःख की अनुभूति हो रही थी वह अब नहीं होती है। पुरुष जैसे निश्चल था, निर्लेप था वह तथागत हो जाता है। साङ्ख्यदर्शन की दृष्टि में यही पुरुष की कैवल्यावस्था है। योगदर्शन इससे थोड़ा सूक्ष्म चिन्तन करता है। साङ्ख्यदर्शन के अनुसार सात्त्विक गुण के उद्रेक के कारण पुरुष एवं प्रकृति का भेदज्ञान अर्थात् विवेकज्ञान हो जाता है यही कैवल्य है, किन्तु योगदर्शन में यह अवस्था सम्प्रज्ञात योग की है। सम्प्रज्ञात योग के अनन्तर साधक द्वारा अनेक प्रक्रियायें पूर्ण की जाती हैं। चूँकि योगसूत्रकार ने चतुर्थ सूत्र में कहा है कि पुरुष के स्वरूपावस्थिति से भिन्न स्थिति में उसका स्वरूप चित्तवृत्तियों के अनुरूप होता है लेकिन जब तक चित्तवृत्तियों के स्वरूप को नहीं समझेंगे तब तक पुरुष में दिखने वाले विकार को नहीं समझ सकेंगे। इसलिए प्रस्तुत इकाई में चित्तवृत्तियों का स्वरूप एवं उनके निरोध का विवेचन किया गया है। चित्तवृत्तियों का स्वरूप जानने के अनन्तर उन चित्तवृत्तियों का निरोध करना भी आवश्यक है क्योंकि जब तक चित्तवृत्तियों का निरोध नहीं किया जायेग तब तक योग ध्येय सिद्ध नहीं होगा।

14.2 चित्तवृत्तियों के प्रकार, स्वरूप एवं निरोध

योगदर्शन में बुद्धि, मन एवं अहङ्कार के समूह मात्र को चित्त कहा गया है। यह चित्त प्रकाशशील अर्थात् सत्त्वगुण वाला, चेष्टाशील अर्थात् रजोगुण वाला एवं स्थैर्यशील अर्थात् तमोगुण वाला होने के कारण त्रिगुणात्मक होता है – **चित्तं हि प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम्**।[1] चित्त के व्यापार अर्थात् बुद्धि, मन एवं अहङ्कार से होने वाले भौतिक विषयों के ज्ञान को चित्तवृत्ति कहते हैं। ये चित्त की वृत्तियाँ मुख्यरूप से पाँच प्रकार की होती हैं किन्तु प्रत्येक चित्तवृत्तियों के सहायक एवं बाधक होने की दृष्टि से इन्हें क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट दृष्टि से भी विभाजित किया गया है – **वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः**।[2] क्लिष्ट का सामान्य अर्थ होता है बाधक। आशय यह है कि जो चित्तवृत्तियाँ योगसिद्धि में बाधा उत्पन्न करती हैं जो चित्तवृत्तियाँ अविद्या, अस्मिता, रागद्वेषादि क्लेशों से युक्त होती हैं वे क्लिष्ट होती हैं – **क्लेशहेतुकाः कर्माशयप्रचयक्षेत्रीभूताः क्लिष्टाः**।[3] वहीं पर जब चित्तवृत्तियाँ सद्ज्ञाँन से क्लेशों का क्षरण करने वाली होती हैं एवं योगसिद्धि में सहायकभूत होती हैं वे अक्लिष्ट चित्तवृत्तियाँ होती हैं – **ख्यातिविषया गुणाधिकारविरोधिन्योऽक्लिष्टाः**।[4] चित्तवृत्तियाँ पाँच प्रकार की अधोलिखित हैं – प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति यथा – **प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः**।[5] यहाँ प्रमाण प्रथम चित्तवृत्ति है जिसका लक्षण पतञ्जलि एवं व्यासभाष्यकार ने नहीं किया है किन्तु टीकाकारों ने शास्त्राभिमत लक्षण किया है यथा – **अनधिगततत्त्वबोधः पौरुषेयो व्यवहारहेतुः प्रमा, तत्करणं प्रमाणम्**[6] अर्थात् तत्त्वाज्ञान की स्थिति में पुरुष को होने वाला बोध ही प्रमा है और उस प्रमा के करण को प्रमाण कहते हैं। प्रमाण चित्तवृत्ति के मुख्यतः तीन भेद किये गये हैं यथा – प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम (शब्द) यथा – **प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि**।[7] जहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण चित्तवृत्ति का लक्षण करते हुए व्यासभाष्यकार ने कहा है कि –

---

1 व्यासभाष्य, १.२
2 योगसूत्र, १.५
3 व्यासभाष्य, १.५
4 वहीं
5 योगसूत्र, १.६
6 द्रष्टव्य – तत्त्ववैशारदी
7 योगसूत्र, १.७

इन्द्रियप्रणालिकया चित्तस्य बाह्यवस्तूपरागात्तद्विषया सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारणप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षं प्रमाणम्[8] अर्थात् इन्द्रिय के द्वारा चित्त के बाह्य वस्तु से सम्पर्क होने पर विषय के सामान्यविशेषात्मक अवबोध से विशेष को प्रधान रूप में धारण करने वाली चित्तवृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण चित्तवृत्ति है। जब प्रत्यक्ष प्रमाण चित्तवृत्ति से सांसारिक विषयों के क्षणभङ्गुरतादि का बोध होने पर मनुष्य में इन विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, चित्त को भौतिक पदार्थों में जाने से रोकने का भाव उत्पन्न हो जाता है तो यह चित्तवृत्ति योगसाधन में सहायक होती है अतः यह अक्लिष्ट होगी। जब प्रत्यक्ष प्रमाण चित्तवृत्ति से सांसारिक पदार्थों में राग उत्पन्न होता है मनुष्य भोगों के प्रति आकृष्ट होता है तो वह प्रत्यक्ष प्रमाण चित्तवृत्ति योगसाधन में बाधक है अतः क्लिष्ट है। पक्ष में साध्य को निश्चित करने वाले लिङ्गपरक ज्ञान से उत्पन्न होने वाले पदार्थ में सामान्य अंश का मुख्यरूप से ग्रहण करने वाली चित्तवृत्ति अनुमान है – **अनुमेयस्य तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः सम्बन्धो यस्तद्विषया सामान्यावधारणप्रधाना वृत्तिरनुमानम्**।[9] जैसे कि चाँद – तारे गतिमान् हैं, इनके अन्य – अन्य देशों में दिखने के कारण। क्योंकि जो जो अन्य – अन्य देशों में दिखता है वह गतिमान् है जैसे – चौत्र (एक व्यक्तिविशेष)। तथा जो गतिमान् नहीं है वह अन्य – अन्य देशों में नहीं दिखता है जैसे – विन्ध्यपर्वत (एक पर्वतविशेष)। इस अनुमान प्रमाण चित्तवृत्ति से भी जब मनुष्य को विषयों में अनित्य, दुःखादि का बोध होता है वह वैराग्य की ओर अग्रसर होता है तो वह अनुमान प्रमाण चित्तवृत्ति अक्लिष्ट है किन्तु जब मनुष्य को इस अनुमान प्रमाण चित्तवृत्ति से विषयों में नित्य, सुखादि का ज्ञान होता है वह उनके उपभोग के लिए प्रवृत्त होता है तो वह क्लिष्ट चित्तवृत्ति है। वेद, शास्त्र एवं आप्त पुरुषों के वचनों को आगम कहते हैं। जहाँ प्रत्यक्ष एवं अनुमान से विषयों का ज्ञान नहीं होता है वहाँ आगम प्रमाण से होता है। आप्तपुरुष द्वारा जब प्रत्यक्ष एवं अनुमित ज्ञान का दूसरे व्यक्तियों के लिए ज्ञानसंक्रमण हेतु शब्दों द्वारा उपदेशित किया जाता है तो शब्दश्रवण से श्रोता के चित्त में उपन्न होने वाली चित्तवृत्ति आगम कहलाती है – **आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वार्थः परत्र स्वबोधसङ्क्रान्तये शब्देनोपदिश्यते, शब्दात्तदर्थविषया वृत्तिः श्रोतुरागमः**।[10] जिस आगम प्रमाण चित्तवृत्ति से मनुष्य को भौतिक भोगों में वैराग्य उत्पन्न होता है योगसाधन में श्रद्धा एवं उत्साह बढ़ता है वह अक्लिष्ट है तथा जिस आगम प्रमाण चित्तवृत्ति से भोगों में प्रवृत्ति एवं योगसाधन में अश्रद्धा बढ़ती है वह क्लिष्ट है। इस प्रकार प्रमाण चित्तवृत्ति के तीन भेद प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम के क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट रूपों को जाना।

पञ्च चित्तवृत्तियों में द्वितीय स्थान पर विपर्यय है। जिसका लक्षण है – **विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्**।[11] अर्थात् जो वस्तु का यथार्थ स्वरूप है उसे उस रूप में न जानकर अन्य रूप में जानना, एतत्प्रकारक मिथ्याज्ञान ही विपर्यय चित्तवृत्ति है। यह चित्तवृत्ति प्रमाण से बाधित हो जाने के कारण प्रमाण की श्रेणी में नहीं आती है क्योंकि अप्रमाण का प्रमाण के द्वारा बाधित होना बार –बार देखा गया है जैसे कि दो चन्द्रमा का दिखायी पड़ना एकचन्द्रदर्शन से निराकृत कर दिया जाता है – **यतः प्रमाणेन बाध्यते, भूतार्थविषयत्वात्प्रमाणस्य। तत्र प्रमाणेन बाधनप्रमाणस्य दृष्टम्। तद्यथा द्विचन्द्रदर्शनं सद्विषयेणैकचन्द्रदर्शनेन बाध्यते**।[12] यह चित्तवृत्ति भी क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट रूपों वाली है जैसे कि जब किसी वस्तु में विपर्यय ज्ञान होकर लोक के प्रति वैराग्य

[8] व्यासभाष्य, १.७
[9] व्यासभाष्य, १.७
[10] वही
[11] योगसूत्र, १.८
[12] व्यासभाष्य, १.८

उत्पन्न हो जाये तब चित्तवृत्ति अक्लिष्ट होगी तथा जब विपर्यय ज्ञान से ही विषयों में भोग की इच्छा उत्पन्न हो जाये तब वह चित्तवृत्ति क्लिष्ट होगी। यह विपर्यय अविद्या नाम से भी प्रसिद्ध है। इस विपर्यय के ही भेद साधनपाद में पञ्च क्लेशों के रूप में वर्णित हैं यथा – **सेयं पञ्चपर्वा भवत्यविद्या, अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेषाः क्लेशाः**।[13] जिसका केवल शब्दशः ज्ञान हो वस्तुतः उसकी सत्ता ही न हो, ऐसी चित्तवृत्ति विकल्प होती है यथा – **शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः**।[14] जैसे जिसका कोई प्रमाण न हो लेकिन लोगों की सुनी सुनायी बातों पर विश्वास करके तद्वत् क्रियाकलाप करना विकल्प है। विकल्प चित्तवृत्ति में वास्तविक अर्थ से रहित होने पर भी शब्दज्ञान के माहात्म्य के कारण व्यवहार में व्यक्ति की प्रवृत्ति – निवृत्ति देखी जाती है – **वस्तुशून्यत्वेऽपि शब्दज्ञानमाहात्म्यनिबन्धनो व्यवहारो दृश्यते**।[15] जैसे कि चैतन्य पुरुष का स्वरूप है किन्तु यदि चैतन्य ही पुरुष है तो चैतन्य पुरुष का स्वरूप कैसे हो सकता है? क्योंकि चैतन्य को पुरुष का स्वरूप मानने पर चैतन्य पुरुष का विशेषण होगा इस प्रकार चैतन्य – पुरुष में विशेषणविशेष्यभाव सम्बन्ध होगा। भास्वतीकार विकल्प का स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि थोथा अर्थात् निर्वस्तुक ज्ञान ही विकल्प कहलाता है – **अवस्तुवाचकशब्दज्ञानस्यानुजातस्तज्ज्ञाननिबन्धनो वस्तुशून्यो वास्तवार्थशून्यो विकल्पः स इति**।[16] यह चित्तवृत्ति प्रमाण एवं विपर्यय दोनों चित्तवृत्तियों में अन्तर्भावित नहीं हो सकती है तत्त्ववैशारदीकार स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि – **वस्तुशून्यत्वेऽपीति प्रमाणान्तर्गतिं निषेधति, शब्दज्ञानमाहात्म्यनिबन्धन इति विपर्ययान्तर्गतिम्।**[17] यह विकल्प चित्तवृत्ति भी यदि विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न करे तो अक्लिष्ट है तथा राग – आसक्ति उत्पन्न करे तो क्लिष्ट है। चतुर्थ चित्तवृत्ति है अभाव। अभाव का लक्षण करते हुए महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं – **अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा**।[18] अर्थात् अभाव के ज्ञान का आलम्बन करने वाली वृत्ति निद्रा होती है। आशय यह है कि प्रगाढ़ निद्रा में सोकर उठे हुए व्यक्ति को भी 'मैं सुखपूर्वक सोया' ऐसा ज्ञान होता है। यह निद्रावृत्ति भी एक प्रकार का ज्ञान ही है इसलिए समाधि के समय इसका भी निरोध किया जाना चाहिए – **तस्मात्प्रत्ययविशेषो निद्रा, सा च समाधावितरप्रत्ययवन्निरोधव्येति**।[19] यह निद्रा वृत्ति भी क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट होती है जैसे कि निद्रा से उठे हुए व्यक्ति का चित्त जब भौतिक साधनों में व्यावृत्त हो जाता है तो वह क्लिष्ट वृत्ति होगी तथा जब साधक निद्रा से उठकर सांसारिक विषयों को अनित्य, दुःखयुक्त मान लेता है तो वह अक्लिष्ट वृत्ति होती है। अनुभूत किये हुए विषय का किसी निमित्त के उपस्थित होने पर पुनः प्रकट हो जाना स्मृति नामक चित्तवृत्ति है यथा – **अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः**।[20] इस चित्तवृत्ति में प्रारम्भ के प्रमाण, विपर्यय, विकल्प एवं निद्रा चित्तवृत्तियों द्वारा अनुभव में आये विषयों का किसी निमित्त के उपस्थित होने पर विषयों का ज्ञान पुनः स्फुरित हो जाता है – **ग्राह्योपरक्तः प्रत्ययो ग्राह्यग्रहणोभयाकारनिर्भासस्तथाजातीयकं संस्कारमारभते, स संस्कारः स्वव्यञ्जकाञ्जनस्तदाकारामेव ग्राह्यग्रहणोभयात्मिकां स्मृतिं जनयति, तत्र ग्रहणाकारपूर्वा बुद्धिः, ग्राह्याकारपूर्वा स्मृतिः**।[21] विषयों के स्मृतिमात्र से भी आनन्द एवं दुःख का अनुभव होता है अतः यह भी एक स्वतन्त्र चित्तवृत्ति है। यह स्मृति

---

13 वही
14 योगसूत्र, १.६
15 व्यासभाष्य, १.६
16 भास्वती, १.६
17 तत्त्ववैशारदी, १.६
18 योगसूत्र, १.१०
19 व्यासभाष्य, १.१०
20 योगसूत्र, १.११
21 व्यासभाष्य, १.११

कल्पितस्मृति विषय वाली एवं यथार्थस्मृति विषय वाली के भेद से दो प्रकार की होती है। स्वप्नकाल में कल्पितस्मृति विषय वाली स्मृति एवं जाग्रत्काल में यथार्थस्मृति विषय वाली स्मृति होती है – **स्वप्ने भावितस्मर्तव्या, जाग्रत्समये त्वभावितस्मर्तव्येति**।[22] इन दोनों प्रकार की स्मृतियों से उत्पन्न होने वाला ज्ञान सुखदुःखमोहात्मक होता है – **सर्वाश्चैता वृत्तयः सुखदुःखमोहात्मिकाः**।[23] स्मृति चित्तवृत्ति में भी जब विषयों के स्मरण से मनुष्य को भोगों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जाये, वह योगसाधना में श्रद्धा एवं उत्साहपूर्वक प्रवृत्त हो तो ऐसी स्मृति चित्तवृत्ति अक्लिष्ट होती है तथा जब किसी विषय के स्मरण से मनुष्य को भोगों में आसक्ति उत्पन्न हो जाये तो वह चित्तवृत्ति क्लिष्ट है। इस प्रकार ये पाँचों प्रकार की चित्तवृत्तियाँ ही पुरुष को उसके यथार्थ स्वरूप की अनुभूति नहीं करने देती हैं, अपनी प्रकृति के अनुसार पुरुष को सुख –दुःख का अनुभव कराती रहती हैं। इन सभी चित्तवृत्तियों का निरोध आवश्यक है। इन सभी वृत्तियों का निरोध होने पर ही सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात समाधियाँ सिद्ध होती हैं – **आसां निरोधे सम्प्रज्ञातो वा समाधिर्भवत्यसम्प्रज्ञातो वेति।**[24]

जगत् प्रपञ्च का सम्पूर्ण व्यापार इन पाँच प्रकार के चित्तवृत्तियों पर ही आश्रित होता है। चित्त और वृत्ति परस्पर अलग – अलग हैं किन्तु इन दोनों के परस्पर संयोग से यह सम्पूर्ण लोक व्यवहार निर्मित होता है तथा इन दोनों के परस्पर वियोग से बन्धन से मुक्ति मिलती है। चित्त का आशय बुद्धि, अहंकार एवं मन इन तीन अन्तःकरणों से है। वैसे तो वेदान्त दर्शन में चित्त को एक स्वतन्त्र अन्तःकरण के रूप में स्वीकृत किया गया है – अनुसान्धानात्मिकान्तःकरणवृत्तिश्चित्तम् अर्थात् अनुसन्धान प्रकार अन्तःकरण का जो व्यापार है वह चित्त है। किन्तु सांख्य एवं योग दर्शन में चित्त को स्वतन्त्र रूप में अन्तःकरण न मानते हुए बुद्धि, अहंकार एवं मन इन तीनों अन्तःकरणों का समाहार रूप ही चित्त कहा गया है। वृत्ति से तात्पर्य व्यापार से है। आशय यह है कि चित्त में विषयों के सम्पर्क से होने वाला जो विकार है व्यापार है वही वृत्ति है। जब तक ये दोनों स्वतन्त्र हैं तब तक इनमें किसी प्रकार का व्यापार नहीं होता है किन्तु जैसे ही ये दोनों एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं वैसे ही सुखदुःखात्मक सम्पूर्ण लोक व्यापार प्रारम्भ हो जाता है। एक प्रश्न उठता है कि यदि प्रकृति से साक्षात् एवं परम्परा से उत्पन्न बुद्धि, अहंकार एवं मन ही चित्त हैं तो प्रत्येक मनुष्य को अलग – अलग प्रकार की विषयानुभूति क्यों होती है? इसका उत्तर इस प्रकार है कि मूल प्रकृति सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण की साम्यावस्था है इस प्रकृति के गुणों में विक्षोभ होने पर ही समस्त सृष्टि होती है। प्रकृति में इस प्रकार के विक्षोभ का कारण पुरुष का सन्निकर्ष होता है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न बुद्धि भी त्रिगुणात्मिका होगी। त्रिगुणात्मिका बुद्धि से उत्पन्न अहंकार भी सत्त्व, रज एवं तमोगुण से युक्त होगा तथा त्रिगुणात्मक अहंकार से उत्पन्न मन में भी ये तीनों गुण उपस्थित रहेंगे। इन तीनों के समाहार चित्त में भी सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण तीनों ही उपस्थित रहेंगे।

जिस मनुष्य का चित्त जिस प्रकार के गुण से प्रभावित रहेगा उसके चित्त में उसी प्रकार के विषयों का आवागमन होता रहेगा। किन्तु गुण तीन हैं तो तीन ही प्रकार के विषयों का सभी मनुष्यों में अनुभव होना चाहिए? ऐसा नहीं है मुख्य रूप से गुण तीन ही हैं किन्तु उनकी प्रत्येक मनुष्य में कम – अधिक की दृष्टि से वैषम्यता रहती है अतः सभी मनुष्यों में भिन्न – भिन्न प्रकार की वृत्तियाँ बनती हैं। यह ठीक उसी प्रकार है कि लकड़ी एक ही है किन्तु किसी ने उसका कुर्सी बनाया, किसी ने टेबल, किसी

[22] वहीं
[23] वहीं
[24] व्यासभाष्य, १.११

ने कुछ भिन्न किसी ने कुछ भिन्न। इस प्रकार गुणों की वैषम्यता के अनुसार प्रत्येक मनुष्य में भिन्न भिन्न प्रकार के विषयों का अनुभव होता रहता है। जैसे कि वर्षा सभी जगह एक ही समय में एक ही जैसी होती है, किन्तु प्रत्येक पेड. – पौधों के लिए अलग – अलग रूप में प्रभावकारी होती है।

ये पाँचों वृत्तियाँ ही सम्पूर्ण लोक व्यापार का हेतु हैं। जगत् में जो भी व्यवहार हैं ज्ञान हैं इन्हीं पाँचों के अन्तर्गत आ जाते हैं। पुनः पुरुष की विवेकख्याति भी एक प्रकार का ज्ञान है अतः वह भी चित्तवृत्तियों के विषय के अन्तर्गत आ जायेगा वस्तुतः साङ्ख्य दर्शन का जो विवेकख्याति है वह योग दर्शन के अनुसार सम्प्रज्ञात समाधि है। सांख्य दर्शन के अनुसार जब साधक के चित्त में सत्त्वगुण का उद्रेक होता है तब रजोगुण एवं तमोगुण दबे रहते हैं ऐसी अवस्था में पुरुष को सात्त्विक विषयों का बोध होता है। चित्त में सत्त्वगुण की अधिकता हो जाती है तो वह पुरुष प्रकृति एवं अन्य सभी तत्त्वों में साधर्म्य – वैधर्म्य को जान लेता है। पुरुष का सभी तत्त्वों में साधर्म्य – वैधर्म्य को जानना ही विवेकख्याति कहलाता है क्योंकि उसने साधर्म्य – वैधर्म्य के द्वारा जैसे ही सभी तत्त्वों को जाना वैसे ही वह इन तत्त्वों में विवेक करने के लिए अग्रसर हुआ और उसकी इस प्रकार की निरन्तर वृत्ति उसको विवेकख्याति की उपलब्धि कराती है। आशय यह है कि पुरुष को अब बोध हो चुका होता है कि वह प्रकृति एवं अन्य तत्त्वों से भिन्न है। जैसा कि पुरुष में बुद्धि का प्रतिबिम्बन होने से वह पुरुष बुद्धि के सभी गुण – धर्मों को अपना मानने लगता है तथा सुख – दुःख – मोह आदि को अपना स्वरूप समझने लगता है। यही उसके अज्ञान की अवस्था है। पुरुष सर्वदैव शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, निश्चल स्वभाव वाला है किन्तु प्रकृति का सान्निध्य होने पर वह अपने स्वरूप को भूल सा जाता है और लोकवत् व्यवहार करने लगता है किन्तु वह पुरुष भी मुक्त होना चाहता है अर्थात् इस अज्ञात से छुटकारा पाना चाहता है। तो चित्त में सात्त्विक गुण की अधिकता से सकारात्मक वृत्तियों के द्वारा धीरे – धीरे सभी कर्म संस्कार नष्ट किये जाते हैं पुनः पुरुष भी अपने स्वरूप को समझने लगता है तथा अपने स्वरूप का बोध होते ही वह समस्त अज्ञानयुक्त बन्धनों से छूट जाता है और अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसीलिए संसार के सभी मनुष्यों में अलग–अलग प्रकार की चित्तवृत्ति बनती है भिन्न–भिन्न प्रकार से विषयों का बोध होता है भिन्न–भिन्न प्रकार से सभी की प्रवृत्ति होती है भिन्न–भिन्न प्रकार से ही सभी को फल भी प्राप्त होता है। अतः ये समस्त लोक व्यवहार चित्तवृत्तियों पर ही आश्रित है जिनका उपशमन करना अत्यन्त आवश्यक होता है इसलिए योगसूत्रकार ने प्रारम्भ में ही इन चित्तवृत्तियों के निरोध की चर्चा की है तथा इन चित्तवृत्तियों के निरोध को ही योग नाम दिया है। आशय यह है कि इन चित्तवृत्तियों के निरोध की पूरी प्रक्रिया योग नाम से प्रसिद्ध है।

चूँकि ये पाँचों वृत्तियाँ चित्त के व्यापार हैं और जब तक यह व्यापार चलता है तब तक पुरुष का मुक्त होना सम्भव नहीं। इन चित्तवृत्तियों के निरोध द्वारा कैवल्य की प्राप्ति ही योग का मुख्य प्रयोजन है। चित्त के स्वरूप का विवेचन करने के उपरान्त उस पर निरोध के उपाय का भी विवेचन किया गया है। विज्ञानभिक्षु ने योगवार्त्तिक नामक टीका में तीन प्रकार के साधकों का वर्णन किया है जहाँ उत्तम साधक के लिए अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध करना प्रथम उपाय है।[25] तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान से भी योगसिद्धि सम्भव है जो कर्मयोग साधना नाम से प्रसिद्ध है, यह मध्यम कोटि के लिए योगसाधन है।[26] यम, नियम से लेकर समाधि तक क्रमशः विजय

[25] अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। योगसूत्र, १.१२

[26] तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः। योगसूत्र, २.१

प्राप्त करते हुए अष्टाङ्गयोग द्वारा अधम साधक भी योगसिद्धि कर कैवल्य प्राप्त कर लेते हैं।[27] जिसके चित्त में सांसारिक विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न होने लगा है और जो अब निरन्तर परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त करना चाहता है वही अधम साधक है। इस प्रकार इन तीन स्तरों पर साधकों द्वारा योग सिद्ध किया जा सकता है।

योगदर्शन में चित्तवृत्तियों के निरोध के उपाय के सन्दर्भ में भगवान् पतञ्जलि ने एक सूत्र रचना की है जो है – **अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः**।[28] अर्थात् पूर्व में जिन पाँच चित्तवृत्तियों का वर्णन किया गया है उनका निरोध अभ्यास एवं वैराग्य के निरन्तर प्रयोग द्वारा किया जा सकता है। सूत्र की व्याख्या करते हुए व्यासभाष्यकार ने चित्त को नदी के समान बताया है किन्तु एक सामान्य नदी केवल एक ही धारा में प्रवाहित होती है किन्तु यह चित्तरूपी नदी परस्पर विरुद्ध दोनों धाराओं में बहने वाली है। यह चित्तरूपी नदी कल्याण एवं पाप दोनों के लिए बहने वाली होती है जैसे कि जब चित्त कैवल्याभिमुखी होकर विवेकपूर्ण विषयों का अनुगमन करती है तब वह कल्याण के लिए बहने वाली होती है तथा जब वह सांसारिक विषयों के प्रति अभिलिप्त होकर अविवेकपूर्वक विषयों का अनुगमन करती है तो वह पाप की ओर बहने वाली होती है – **चित्तनदी नामोभयतो वाहिनी, वहति कल्याणाय वहति पापाय च, या तु कैवल्यप्राग्भारा विवेकविषयनिम्ना सा कल्याणवहा, संसारप्राग्भाराऽविवेकविषयनिम्ना पापवहा**।[29] ऐसी स्थिति में वैराग्य नामक उपाय चित्त को विषयहीन करके अर्थात् विषयों से चित्त को हटाकर चित्त को निर्विषयी कर देता है तथा विवेकपूर्ण विषयों का निरन्तर अभ्यास करने से चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाने से पुरुष अपने यथार्थ स्वरूप को प्राप्त कर लेता है – **तत्र वैराग्येण विषयस्रोतः खिलीक्रियते, विवेकदर्शनाभ्यासेन विवेकस्रोत उद्घाट्यत इत्युभयाधीनश्चित्तवृत्तिनिरोधः**।[30] भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में मनोनिग्रह के लिए अभ्यास एवं वैराग्य को प्रधान उपाय बताया है। यह मन निःसन्देह अत्यन्त चञ्चल एवं दुर्निग्रह है किन्तु इसको भी अभ्यास एवं वैराग्य से नियन्त्रित कर सकते हैं यथा –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।[31]

महर्षि पतञ्जलि ने अभ्यास का लक्षण करते हुए कहा है कि भौतिक विषयों में संलिप्त चञ्चल चित्त को शान्त एवं स्थिर करने के लिए बारम्बार प्रयत्न करना ही अभ्यास है यथा – **तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः**।[32] शब्दकल्पद्रुम में अभ्यास का लक्षण प्राप्त होता है – **चित्तस्यैकस्मिन्नभ्यन्तरे बाह्ये वा प्रतिमादावालम्बने सर्वतः समाहृत्य पुनः पुनः स्थापनमभ्यासः** अर्थात् चित्त को बाहरी अन्य सभी विषयों से समाहरण कर यदि सम्भव है तो आभ्यन्तर आलम्बन में बार–बार प्रयत्नपूर्वक स्थापित करना चाहिए, यदि आभ्यन्तर आलम्बन में स्थापित नहीं हो पा रहा है तो बाह्य आलम्बन जैसे कि कोई प्रतिमा, चित्र, व्यक्ति या अन्य कोई भी आलम्बन जिसमें आप आसानी से चित्त को स्थापित कर सकते हैं; उसमें चित्त को अन्य बाह्य विषयों से हटाकर बार बार प्रयत्नपूर्वक स्थापित करना ही अभ्यास कहलाता है। भगवान् भाष्यकार कहते हैं कि

---

[27] योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। योगसूत्र, २.२८
[28] योगसूत्र, १.१२
[29] व्यासभाष्य, १.१२
[30] वही
[31] श्रीमद्भगवद्गीता, ६.३५
[32] योगसूत्र, १.१३

राजस एवं तामस वृत्तियों से रहित होकर चित्त का शान्तरूप में प्रवाहित होना चित्त की स्थिति है तथा इस प्रकार से निस्तरङ्ग रूप में चित्त के प्रवाहित होने के लिए मानसिक एवं शारीरिक प्रयास प्रयत्न है तथा इसी स्थिति को निरन्तर रूप में बनाये रखने के उसके साधनों का अनुष्ठान करना अभ्यास है यथा– **चित्तस्यावृत्तिकस्य प्रशान्तवाहिता स्थितिः, तदर्थः प्रयत्नो वीर्यमुत्साहः, तत्सम्पिपादविषया तत्साधनानुष्ठानमभ्यासः**।[33] भामतीकार अभ्यास का लक्षण करते हुए कहते हैं कि प्रशान्तवाहिता स्थिति में रहने हेतु जो प्रयास किया जाता है वही अभ्यास है– **स्थित्यर्थं यो यत्नः सोऽभ्यासः**।[34] प्रशान्तवाहिता स्थिति को परिभाषित करते हुए योगवार्त्तिककार कहते हैं कि हर्षशोकादि चित्तगत तरङ्गों से रहित होकर एकाग्रवृत्ति का अनुलम्बन करना प्रशान्तवाहिता स्थिति है– **हर्षशोकादितरङ्गरहिता या एकाग्रवृत्तिधारा**।[35] प्रशान्तवाहिता का स्वरूप बताते हुए तत्त्ववैशारदीकार कहते हैं कि विमल, सात्त्विक वृत्तियों का प्रवाह होना एवं एकाग्रता का भाव रहना प्रशान्तवाहिता स्थिति है– **विमला सात्त्विकवृत्तिवाहिता एकाग्रता स्थितिस्तदर्थ इति**।[36] आशय यह है कि चित्त का राजस एवं तामस गुणों से रहित होकर सात्विक उद्रेकपूर्वक एकाग्रता का भाव रहना ही प्रशान्तवाहिता स्थिति है। स्थिति के साधनों के प्रसङ्ग में तत्त्ववैशारदीकार कहते हैं कि इस प्रशान्तवाहिता स्थिति के साधन अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग यमनियमादि ही परम साधन हैं– **स्थितिसाधनानि अन्तरङ्गबहिरङ्गाणि यमनियमादीनि**।[37] भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे धनञ्जय ! यदि तुम चित्त को मुझमें स्थापित नहीं कर पा रहे हो तो चित्त को सभी ओर से खींचकर अभ्यासयोग द्वारा मुझे प्राप्त करने का प्रयत्न करो – **अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय**।[38] चित्तशुद्धि के लिए अभ्यास को अनेकों रूपों में बताया गया है जैसे कि जब चित्त को एकाग्र करने में बार बार विघ्न उत्पन्न हो रहा हो तो किसी एक वस्तु में चित्त को बार–बार प्रयत्न करके स्थिर करने का अभ्यास करना चाहिए, यह एकाग्रता के लिए किया गया अभ्यास है – **तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः**।[39] इसी प्रकार चित्त के रागद्वेषादि दोषों का नाश करने के लिए साधक द्वारा सुखी मनुष्य के प्रति मित्रता की भावना रखनी चाहिए, दुःखी मनुष्य के प्रति दया की भावना करनी चाहिए, पुण्यात्मा मनुष्य के प्रति प्रसन्नता की भावना रखनी चाहिए तथा पापी मनुष्य के प्रति उपेक्षा की भावना करनी चाहिए। ये मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा चित्तप्रसादन के उपाय बताये गये हैं। तथा इनका बारम्बार अभ्यास करने से ही ये प्रतिफलित होते हैं – **मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादन्**।[40] इसी प्रकार नियमपूर्वक वायु के बार बार बाहर निकालने एवं रोकने का अभ्यास करने से भी चित्त निर्मल हो जाता है। यह अभ्यास भी दीर्घकाल तक निरन्तर एवं आदरपूर्वक सेवन करने से अत्यन्त दृढ हो जाता है यथा – **स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढभूमिः**।[41] आशय यह है कि जब साधक दीर्घकाल तक प्रशान्तवाहिता स्थिति में रहते हुए सत्कारपूर्वक अर्थात् शास्त्रों में बताये गये नियमों तप, ब्रह्मचर्य, विद्या और श्रद्धा से युक्त होकर अभ्यास करता है तो वह अभ्यास दृढभूमि वाला हो जाता है। दृढभूमि मतलब अभ्यास सुस्थिर

---

[33] व्यासभाष्य, १.१३
[34] भास्वती, १.१३
[35] योगवार्त्तिक, १.१३
[36] तत्त्ववैशारदी, १.१३
[37] तत्त्ववैशारदी, १.१३
[38] श्रीमद्भगवद्गीता, १२.९
[39] योगसूत्र, १.३२
[40] योगसूत्र, १.३३
[41] योगसूत्र, १.१४

एवं सुदृढ हो जाता है **दीर्घकालासेवितो, निरन्तरासेवितः, सत्कारासेवितः, तपसा, ब्रह्मचर्येण विद्यया श्रद्धया च सम्पादितः सत्कारवान्दृढभूमिर्भवति**।[42] सुदृढ अभ्यास से प्रशान्तवाहिता स्थिति में स्थित चित्त व्युत्थान के समय तुरन्त ही अभिभूत नहीं होता है खण्डित नहीं होता है – **व्युत्थानसंस्कारेण द्रागित्येवानभिभूतविषयः इत्यर्थः**।[43] इस प्रकार चित्तवृत्ति के निरोध के उपाय अभ्यास का विस्तृत विवेचन किया गया है। यह अभ्यास योगसिद्धि में अत्यन्त सहायक है क्योंकि प्रत्येक प्रक्रिया में अभ्यास का होना अत्यन्त आवश्यक है।

चित्तवृत्तिनिरोध के लिए दूसरा साधन वैराग्य है। वैराग्य का सामान्य अर्थ है – विरक्ति। जो वस्तु अत्यन्त प्रिय हो उसकी वास्तविकता जानने के बाद उसके प्रति निस्पृह भाव उत्पन्न हो वही विरक्ति है। सांसारिक विषयों में राग ही पुनर्जन्म का कारण है, यह राग, यह आसक्ति जब तक है तब तक पुरुष का मुक्त हो पाना असम्भव है। इसलिए चित्त को विषयों से निस्पृह रखना आवश्यक है। महर्षि पतञ्जलि ने उत्तम कोटि के वैराग्य का लक्षण करते हुए कहा है कि **दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्**।[44] अर्थात् अन्तरिन्द्रिय एवं भौतिक इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भौतिक विषयों एवं शास्त्रविदित भोगों एवं स्वर्गादि विषयों के प्रति चित्त जब तृष्णारहित अर्थात् निस्पृह हो जाता है आशय यह है कि जब इन विषयों के भोगने की इच्छा न रह जाये, वह कामनारहित चित्त की वशीकार नामक अवस्था वैराग्य है। इस विवेकपूर्ण वैराग्य से युक्त चित्त जब इस निश्चल अवस्था का बारम्बार अभ्यास करता है तो चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। लोक में स्त्री, अन्न, पान, सम्पत्ति एवं ऐश्वर्यादि ही लौकिक विषय हैं तथा स्वर्गादि पारलौकिक विषय हैं, इन दोनों प्रकार के विषयों की उपलब्धता होने पर भी जब चित्त उसके प्रति आकर्षित नहीं होता है, चित्त विषयों में दोष देखने लगता है, विवेकज्ञान के बल से भोगने का भाव त्यागकर उसके प्रति स्पृहाशून्य हो जाता है वही उपेक्षाबुद्धि की स्थिति वशीकार संज्ञक वैराग्य है। चूँकि यहाँ सूत्रकार ने परम वैराग्य का उल्लेख कर दिया है किन्तु उससे भी पूर्व तीन अन्य वैराग्य भी प्राप्त होते हैं। वैराग्य के कुल चार चरण इस प्रकार हैं – यतमान संज्ञा, व्यतिरेक संज्ञा, एकेन्द्रिय संज्ञा एवं वशीकार संज्ञा। ये चारों वैराग्य क्रमशः वैराग्य की ही अवस्था हैं जैसे कि यतमान संज्ञक वैराग्य में साधक विषयों को छोड़ना तो चाहता है किन्तु वह उन्हें छोड़ नहीं पाता है। व्यतिरेक संज्ञक वैराग्य में कुछ विषयों में विरक्ति तो हो जाती है किन्तु कुछ विषयों में अभी भी राग होता ही है। एकेन्द्रिय संज्ञक वैराग्य में सभी विषयों के प्रति इन्द्रियों का तो आकर्षण नहीं रहता है किन्तु मन में उन विषयों का चिन्तन होता रहता है तथा अन्तिम वशीकार संज्ञक वैराग्य में इन्द्रियों के साथ–साथ मन में भी वैराग्य हो जाता है इस प्रकार अन्तिम वशीकार संज्ञक वैराग्य की स्थिति में सभी विषयों के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो जाती है यही परम वैराग्य है यही अपर वैराग्य है। इस प्रकार चित्तवृत्तियों के निरोध में अभ्यास एवं वैराग्य ही परम साधन हैं।

14.3 सारांश

योगदर्शन मुख्यतः चित्तवृत्ति के निरोध का विवेचन करता है। चित्तवृत्ति निरोध के प्रसङ्ग में ही सम्पूर्ण योगसूत्र की रचना हुई है। चित्तवृत्ति निरोध में सहायकभूत अनेक विषयों का प्रतिपादन तथा योगसिद्धि के काल में ही प्राप्त होने वाले कुछ प्रमुख

[42] व्यासभाष्य, १.१४
[43] वहीं
[44] योगसूत्र, १.१५

विभूतियों का भी उल्लेख किया गया है। योग के स्वरूप को पूर्ण रूप से जानने के क्रम में चित्तवृत्तियों को जानना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि चित्तवृत्तियों के निरोध को ही योग कहा गया है। चित्त का व्यापार ही चित्तवृत्ति है। चित्त का विभिन्न विषयों में गमन ही चित्तवृत्ति है। यह चित्तवृत्ति भी प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति के भेद से पाँच प्रकार की है। ये सभी चित्तवृत्तियाँ क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट दोनों प्रकार की होती हैं। कहने का आशय है कि ये पाँचों चित्तवृत्तियाँ विषयों के प्रति इच्छा उत्पन्न करके बन्धन में डालती हैं तो विषयों के प्रति स्पृहा उत्पन्न करने उनसे निवृत्त भी करती हैं। इन चित्तवृत्तियों का निरोध अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा ही सम्भव है। जब चित्त में राजसिक एवं तामसिक विषयों का प्रवाह बन्द हो जाये तथा निरन्तर सात्त्विक विषयों का ही प्रवाह होता रहे चित्त भी किसी एक आलम्बन के प्रति आकृष्ट हो, ऐसी स्थिति को बनाये रखने के लिए बार–बार प्रयत्न करना ही अभ्यास होता है। लौकिक एवं पारलौकिक विषयों के प्रति निस्पृह होना वैराग्य कहलाता है। ये दोनों उपाय ही चित्तवृत्तियों का पूर्णतया निरोध कर सकते हैं।

14.4 शब्दावली

चित्त	बुद्धि, मन एवं अहंकार का समाहार रूप
चित्तवृत्ति	चित्त का विषयों में व्यापार
चित्तवृत्तिनिरोध	चित्त को विषयों में जाने से रोकना
प्रमाण	प्रथम चित्तवृत्ति, प्रत्यक्षादि ज्ञान का हेतु
विपर्यय	द्वितीय चित्तवृत्ति, अज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान
विकल्प	तृतीय चित्तवृत्ति, निर्वस्तुक विषय का ज्ञान होना
निद्रा	चतुर्थ चित्तवृत्ति, अभावप्रत्यय का आलम्बन करने वाली वृत्ति
स्मृति	पंचम चित्तवृत्ति, अनुभूत विषय की पुनः उपस्थिति
क्लिष्ट	अविद्यादि क्लेश से युक्त चित्तवृत्ति
अक्लिष्ट	विवेकज्ञान से युक्त चित्तवृत्ति
अभ्यास	निरन्तर प्रयत्न करना
वैराग्य	विषयों में विरक्ति
दृष्ट	लौकिक विषय
आनुश्रविक	पारलौकिक विषय

14.5 बोध / अभ्यास प्रश्न

१. चित्तवृत्ति क्या है? भेदपूर्वक विवेचन करें।

२. प्रमाण नामक चित्तवृत्ति भेदपूर्वक वर्णन करें।

३. चित्तवृत्ति निरोध के उपायों का उल्लेख करें।

४. चित्तवृत्ति निरोध के उपाय अभ्यास का शास्त्रीय विवेचन करें।

५. चित्तवृत्ति निरोध के उपाय वैराग्य का महत्त्व स्पष्ट करें।

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. पातञ्जल योगसूत्र, व्याख्याकार, श्रीनन्दलाल दशोरा, हरिद्वार, रणधीर प्रकाशन, १९९७।

२. योगदर्शन (प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या), व्याख्याकार, स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी, मुम्बई, श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट।

३. योगदर्शन, व्याख्याकार, पं. राजाराम प्रोफेसर, लाहौर, साहित्य प्रचारक मण्डल, १९२२।

४. पातञ्जलयोगदर्शनम्, व्याख्याकार, डॉ. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, वाराणसी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।

५. पातञ्जलयोगदर्शनम्, व्याख्याकार, श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी विज्ञानाश्रम, अजमेर, दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस १९३२।

६. पातञ्जलयोगसूत्र (बंगाली बाबा व्याख्या), हिन्दी अनुवादक, कुमारी वृजरानी देवी, पूना, एन.आर.भार्गव, १९४८।

७. योगदर्शन समीक्षा, लेखक – पं. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, वाराणसी, कृष्णदास अकादमी, १९९७।

८. योगतत्त्वाङ्क, कल्याण विशेषाङ्क, गीताप्रेस गोरखपुर, वर्ष १९९।

९. भारतीय दर्शन के मूल तत्त्व, लेखक – एम. हिरियन्ना, अनु. प्रकाश नारायण शर्मा, सेन्ट्रल बुक डिपो, १९५४।

१०. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, लेखक – प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, १९७४।

११. भारतीय दर्शन, लेखक – आचार्य बलदेव उपाध्याय, वाराणसी, चौखम्भा ओरियन्टालिया, १९७६।

१२. भारतीय दर्शन, लेखक – वाचस्पति गैरोला, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, २००६।

१३. भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, लेखक – चन्द्रधर शर्मा, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, २०१०।